



अध्याय ६

ध्यान योग

श्रीभगवानुवाच ।
 अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
 स संन्यासी च योगीच न निरग्निर्नचाक्रियः ॥ ६-१ ॥

भगवान् श्री कृष्ण ने कहा, जो अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन करता है और उन कार्यों के परिणामों का त्याग कर देता है, वह एक योगी एवं संन्यासी है। केवल अपने कर्मों का त्याग करके, बिना कोई कार्य किए, कोई भी संन्यासी नहीं बन सकता।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
 न ह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥ ६-२ ॥

हे पाण्डुपुत्र, जिसे संन्यास कहा जाता है वह दरसल योग के समान ही होता है। इंद्रियों को संतुष्ट करने की इच्छा का त्याग किए बिना कोई कभी योगी नहीं बन सकता।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
 योगारुढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ६-३ ॥

जो योग मार्ग की प्रारंभिक अवस्था में है, उसके लिए कर्म ही माध्यम है। और जो योग में अभ्यस्त है, उसके लिए कर्म का त्याग ही माध्यम है।

यदा हि नेन्द्रियार्थैषु न कर्मस्वनुष्जते ।
 सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारुढस्तदोच्यते ॥ ६-४ ॥

जब किसी को ना तो इंद्रिय-तृप्ति की वस्तुओं से लगाव होता है, और न उन गतिविधियों से जो उनके आनंद की ओर ले जाए, उस समय, यह कहा जाता है कि किसी ने योग प्राप्त कर लिया है।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
 आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ६-५ ॥

मनुष्य को अपने मन के द्वारा स्वयं को ऊपर उठाना चाहिए ना कि अपने आप को नीचे गिरने देना। निश्चित रूप से, मन मनुष्यों का मित्र होने के साथ-साथ उनका सबसे बड़ा शत्रु भी है।

श्रीमद्भगवद्गीता

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्ततात्मैव शत्रुवत् ॥ ६-६ ॥

जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, उसके लिए मन ही उसका मित्र है। लेकिन, जिसने अपने मन को नियंत्रित नहीं किया है, उसके लिए उसका मन ही उसका सबसे बड़ा शत्रु है।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ६-७ ॥

जिन्होंने अपने मन को वश में कर लिया है और जो शांत हैं, उन्हें परमात्मा (परम चेतना) की अनुभूति प्राप्त होती है। ऐसे व्यक्तियों के लिए सर्दी-गर्मी, सुख-दुख, एवं मान-अपमान सभी एक समान होते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

कई टीकाकारों ने यह कहा है की, भगवद्गीता के छठे अध्याय में बताए गए ध्यान की विधियां, अष्टांगयोग नामक योग प्रणाली की अष्टसंख्यक प्रक्रियाओं से लिए गए हैं। योगसूत्रों के प्रसिद्ध रचयिता, पतंजलि ने अष्टांगयोग योग प्रणाली को क्रमबद्ध क्रम में इस प्रकार वर्णन किया है -

सबसे पहले, हमे यम का अभ्यास करना चाहिए, जिसमें सूर्योदय से पहले बिस्तर से उठना, स्नान करना, वेदों का अध्ययन करना एवं पूजा की पद्धति शामिल है।

नियम की प्रक्रिया में नशा, अवैध संबंध, जुआ, मांस, मछली एवं अंडे का सेवन वर्जित होता है।

तत्पश्चात् व्यक्ति शारीरिक व्यायाम एवं अभ्यास से अपने शरीर को अनुकूल बना कर आसनों का अभ्यास शुरू करता है, जिसका उद्देश्य संपूर्ण शारीरिक संतुलन पाना होता है।

तब वह प्राणायाम करने के लिए अग्रसर होता है जिसमें अपने श्वास को अन्दर एवं बाहर क्रमानुसार नियंत्रित करने का अभ्यास विभिन्न आसनों के साथ किया जाता है। जब आसन एवं प्राणायाम केवल स्वास्थ्य पाने के उद्देश्य से किया जाता है, तो कभी-कभी इसे हठ योग कहा जाता है।

प्राणयाम के बाद प्रत्याहार का अनुसरण होता है, अर्थात्, इंद्रिय-वस्तुओं से इंद्रियों को हटाना और मन को आत्मनिरीक्षण युक्त एवं अंतर्ज्ञानात्मक बनने के लिए प्रशिक्षित करना। तब जाकर कोई व्यक्ति अपने ध्यान में बिना विचलित हुए अपने मन को एक बिन्दु पर केन्द्रित कर पाता है। इसे धारण कहा जाता है, जो है एकाग्रचित्त की प्राप्ति।

एक बार मन को एकाग्रचित्त करने की क्षमता प्राप्त करने के पश्चात्, बाहरी स्रोतों द्वारा बिना ध्यान भंग किए हुए ही कोई वास्तविक ध्यान आरंभ कर सकता है। योग प्रणाली में ध्यान के कई रूप हैं, हालांकि, उनमें से कोई भी अवस्तुता या शून्यता पर ध्यान केंद्रित करने की सलाह नहीं देते। योग में ध्यान लगाने के तीन मुख्य वस्तुएं हैं, ये हैं ब्रह्मन (पारलौकिक प्रकाश), परमात्मा (मूल परमचेतना) और भगवान् (श्री कृष्ण)।

समाधि अष्टांगयोग का अंतिम चरण है जिसमें, योगी भौतिक शरीर छोड़ने के समय, अपनी वांछित सिद्धी के लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। जो योगी ब्रह्मन या परमात्मा के प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वे अपने शरीर का त्याग करने के पश्चात् ब्रह्मज्योति में प्रवेश करते हैं, और जो योगी भगवान् के प्राप्ति की इच्छा रखते हैं वे वैकुण्ठ या गोलोक वृन्दावन में प्रवेश करते हैं जहां वे भगवान् श्री कृष्ण की अलौकिक लीला में सम्मिलित होने जाते हैं।

योग के कई आचार्यों के अनुसार, केवल भगवत् प्राप्ति ही शाश्वत है। ब्रह्मन या परमात्मा की प्राप्ति एवं सर्वोच्च ब्रह्मन में विलय होने के बाद भी, योगी को फिर से भौतिक दुनिया में वापस आना होगा एवं फिर से जन्म और मृत्यु के चक्र को शुरू करना होगा। ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि क्रियाशीलता ही सभी जीवात्माओं की आंतरिक प्रकृति होती है। यद्यपि ब्रह्म-ज्योति में जो आनंद की भावना है वह भौतिक सुख की तुलना में हजारों गुना अधिक होती है, तिस पर भी कर्म करने की इच्छा बनी रहती है। लेकिन, चूंकि ब्रह्मन सिद्ध योगी एवं परमात्मा सिद्ध योगी श्री कृष्ण की भक्तिपूर्ण सेवा करने के योग्य नहीं हैं, वे आध्यात्मिक लोक में प्रवेश नहीं कर सकते, और इसलिए उन्हें निश्चित रूप से दोबारा इस भौतिक दुनिया में फिर से जन्म लेना पड़ेगा।

ज्ञानविज्ञानतुसात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाश्वनः ॥ ६-८ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

जो योगी अपने ज्ञान एवं आत्म-साक्षात्कार के कारण आत्म-संतुष्ट रहता है, वह योगी अपने आध्यात्मिक स्वभाव में स्तिथ रहकर, एवं अपने इन्द्रियों को वश में रखकर, सभी वस्तुओं को एक समान रूप से देखता है, चाहे वह कंकर हो, या पत्थर हो, या सोना हो।

सुहन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ६-९ ॥

ऐसा निष्पक्ष-प्रज्ञावान योगी, सभी को, एक सच्चा शुभचिंतक, एक स्नेही उपकारी, शत्रु, तटस्थ व्यक्ति, एक मध्यस्थ, एक ईर्ष्यालु व्यक्ति, एक रिश्तेदार, एक पवित्र व्यक्ति, और अधार्मिक व्यक्ति को एक समान भाव से देखता है।

योगी युज्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ ६-१० ॥

एक योगी को अपने मन और शरीर को पूरी तरह से नियंत्रित करके एकात्म स्थान में निवास करना चाहिए। उसे समस्त आकांक्षाओं तथा संग्रहभाव से मुक्त होकर लगातार अपने मन को, अपनी अंतरात्मा पर केंद्रित करना चाहिए।

शुचौ देशो प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ६-११ ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ ६-१२ ॥

योगी को एक निर्मल वातावरण में एक ऐसा आसन स्थापित करना चाहिए जो न तो बहुत ऊँचा हो ना बहुत नीचा, फिर उस आसन पर कुशा, मृगछाला, एवं मुलायम वस्त्र बिछाना चाहिए। इस आसन पर बैठकर योगी को मन, इन्द्रियों एवं कर्मों को वश में रखते हुए, मन को एक बिन्दु पर एकाग्रित करके, अपने हृदय को शुद्ध करने के लिए योगाभ्यास करना चाहिए।

समं कायशिरोग्रीवंधारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ ६-१३ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ ६-१४ ॥

अपने शरीर, सिर एवं गर्दन को सीधा रखकर, योगी को अचल व स्थिर रहना चाहिए, और इस अवस्था में किसी अन्य दिशा पर बिना दृष्टि डाले, अपनी नाक के सिरे को ताकते रहना चाहिए। अविचलित, निर्भय और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, उसे बैठकर, मुझे ही अपना सर्वोच्च लक्ष्य मानते हुए, मुझ पर ध्यान लगाकर अपने मन को वश में करना चाहिए।

युज्ज्ञेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ ६-१५ ॥

इस तरह योगी भौतिक इच्छाओं से अपने मन को हटाकर उसे नियंत्रित कर लेता है। तब वह परम शांति एवं भौतिक अस्तित्व से मुक्ती पाकर, मेरा धाम प्राप्त कर लेता है।

नात्यश्वतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्वतः ।
न चातिस्वप्रशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ ६-१६ ॥

हे अर्जुन, बहुत अधिक खाने से या बहुत कम खाने से, ज्यादा सोने से या बहुत कम सोने से, कोई योग अभ्यास नहीं कर सकता।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्रावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ ६-१७ ॥

जो खाने और विश्राम करने में संयमित रहे, जो अपने सभी कार्यों को नियमित तरीके से करे, और जो अपने निद्रा एवं जागृत अवधियों में अच्छी संतुलन बनाए रखे, योग ऐसे व्यक्ति की पीड़ा को नष्ट कर देता है।

~ अनुवृत्ति ~

श्री कृष्ण अर्जुन को एक बार दोबारा श्लोक १५ में बताते हैं कि योग का अंतिम लक्ष्य उनके सर्वोच्च धाम (वैकुंठ या गोलोक वृन्दावन) को प्राप्त करना है। वास्तव में यही योग पद्धति का अंतिम लक्ष्य है। यदि कोई व्यक्ति बहुत अधिक भोजन करता है या पर्याप्त भोजन नहीं करता है, तो वह योगी नहीं हो सकता। बहुत अधिक भोजन का यह भी अर्थ होता है कि शरीर को बनाए रखने के लिए मांसाहारी खाद्य पदार्थों का सेवन करना, जबकि वास्तव में यह आवश्यक नहीं है। इसका अर्थ यह भी है कि दूध को मांसाहारी मानकर इसके उत्पादों के सेवन

से परहेज नहीं करना चाहिए। दूध संभावित सबसे पूर्ण भोजन है। दुग्ध उत्पाद एक मजबूत शारीरिक गठन के विकास में एवं हमारे मस्तिष्क की कोशिकाओं का पोषण करने में मदद करती हैं और इस प्रकार ये हमारी सोचने की क्षमता को भी विकसित करती है। योग एक ऐसी चीज है जिसका अभ्यास भारत में हजारों सालों होता आ रहा है, और तब से लेकर आज तक, योगियों ने दूध और दूध से बने पदार्थों का, जैसे कि दही, पनीर आदि के सेवन की अनुशंसा की है। केवल हाल ही के दिनों में कुछ लोगों ने दूध के उत्पादों को लेना बुरा समझ रखा है, लेकिन योग के आचार्यों ने कभी भी इस तरह के परहेज की अनुशंसा नहीं की है।

उपरोक्त श्लोकों में उचित बैठने का ढंग, इंद्रियों पर नियंत्रण एवं ब्रह्मचर्य का पालन करने की भी सिफारिश की गई है, क्योंकि ऐसी विधि के बिना वास्तव में कोई भी योगी नहीं हो सकता। ध्यान करते हुए, अन्य दिशाओं में नज़र डाले बिना नाक की नोक पर टकटकी लगाकर संपूर्ण एकाग्रता से धारणा करना, और श्री कृष्ण पर ध्यान लगाना ही ध्यान का सर्वोच्च लक्ष्य है।

जहाँ तक संभव हो, योग का अभ्यास करने के लिए योगी को पवित्र (धार्मिक) स्थान पर ही निवास करने का प्रयास करना चाहिए। भारत में योगी, गंगा के तट पर, हरिद्वार, वाराणसी, या मायापुर में रहना पसंद करते हैं, या किसी दूसरी पवित्र नदी जैसे कि यमुना, कावेरी, गोदावारी, के तट पर रहना पसंद करते हैं। कुछ योगी हिमालय के अभयारण्य को पसंद करते हैं, और कुछ अन्य चारधाम (द्वारका, बद्रीनाथ, जगन्नाथ पुरी और रामेश्वरम) में निवास करना पसंद करते हैं। किसी भी स्थिति में, योगी को योग का अभ्यास करने के लिए उचित स्थान का चुनाव करना चाहिए।

यदि कोई पवित्र स्थान पर या पवित्र नदी के तट पर रहने में असमर्थ है, तो उस व्यक्ति को एक आश्रम या योग समुदाय में रहने का प्रयास करना चाहिए। यदि कोई योग समुदाय में रहने में असमर्थ है तो व्यक्ति को अपने घर को पवित्र करना चाहिए, जहाँ पर श्री कृष्ण की पूजा और मंत्र साधना की जा सके। घर में चिंतन, अध्ययन और इंद्रियों को नियंत्रित करने के लिए अनुकूल माहौल होना चाहिए। घर शांतिपूर्ण होना चाहिए और हिंसा, पशु हत्या, नशा आदि से मुक्त होना चाहिए।

इस आधुनिक युग (कलियुग) में पशु-हत्या, नशा और कई अन्य प्रतिकूल गतिविधियां हर जगह पाई जाती हैं। इसलिए, योग अभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ़ना, विशेषकर अष्टांग-योग, राज-योग, हठ-योग आदि के लिए बहुत मुश्किल है। इसलिए कलियुग में भक्ति योग अनुशंसित प्रक्रिया है जिसमें ध्यान महा मंत्र के जप के माध्यम से किया जाता है -

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

महा-मंत्र का जाप इतना शक्तिशाली और पावन होता है कि जहाँ भी इसका जाप किया जाता है, वह उस स्थान को शुद्ध कर देता है। इस प्रकार भक्ति-योग प्रक्रिया का अभ्यास किसी भी जगह पर कहीं भी किया जा सकता है। कलियुग में भक्ति-योग ही वास्तव में एकमात्र अनुशंसित प्रक्रिया है।

एक योगी को सदैव आत्म-संतुष्टि, ज्ञान एवं आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। ऐसा योगी जो इस दुनिया में सदैव सब चीजों को एक भाव से देखता है वह अस्थायी प्रकृति की किसी भी वस्तु पर आसक्त नहीं होता। श्रीकृष्ण का कहना है कि एक योगी 'सोना और पत्थर' दोनों को एक समान भाव से देखता है। इसका यह मतलब नहीं है कि योगी साधारण वस्तुओं एवं सोने की चमक के अंतर को नहीं समझता, किंतु इसका अर्थ यह है कि योगी धन संग्रह से संतुष्टि पाने के विचार से आकर्षित नहीं होता।

यह कहा गया है कि धन की कामना ही दुनिया को गोल घुमाती है। यह इस अर्थ में सत्य है कि धन की इच्छा ही अधिकांश लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन दुःख की बात है कि हम यह भी स्पष्ट रूप से देख रहे हैं कि धन का लोभ आज दुनिया को - राजनैतिक अशांति की पराकाष्ठा जो युद्ध, मृत्यु एवं विनाश, आर्थिक अस्थिरता के साथ-साथ पर्यावरण में चरम अस्थिरता की ओर लिये जा रहा है। इसके परिणाम स्वरूप ही प्राकृतिक आपदाएं हो रही हैं एवं प्राणियों की कई प्रजातियां भी विलुप्त हो रही हैं।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥६-१८॥

जब स्थिर मन अनन्य भाव से स्वयं में स्थित होता है, तो वह व्यक्ति सभी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है - ऐसा व्यक्ति योग में स्थित कहा जाता है।

यथा दीपो निवातस्थो नेञ्जते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ ६-१९ ॥

जिस तरह एक हवा रहित जगह पर एक ज्योति नहीं टिमटिमाती, उसी तरह स्वयं पर एकाग्रत एक योगी का मन कभी नहीं लहराता।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ ६-२० ॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्वलति तत्त्वतः ॥ ६-२१ ॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ ६-२२ ॥
तं विद्यादुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ ६-२३ ॥

जब योगाभ्यास से मन संयमित और शांत हो जाता है, तो वह भौतिक इच्छाओं से अलग हो जाता है। तब वह व्यक्ति स्वयं की अनुभूति कर सकता है एवं आनंद की प्राप्ति करता है। सांसारिक इंद्रियों के दायरे से परे और बुद्धि के माध्यम से प्राप्त, शाश्वत आनंद की इस अवस्था में स्थित होने के पश्चात, कोई भी वास्तविकता से विचलित नहीं होता। इस स्थिति को प्राप्त करने के बाद, वह समझता है कि इससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है और वह बड़ी से बड़ी विपत्तियों में भी विचलित नहीं होता। तुम्हे यह समझना चाहिए की यह अवस्था जिसमें समस्त दुःखों का निवारण हो जाता है, उसे ही योग कहते हैं।

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यत्त्या सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ ६-२४ ॥

व्यक्ति को दृढ़ संकल्प और अटूट मन के साथ योग का अभ्यास करना चाहिए। योग का अभ्यास करने के लिए, व्यक्ति को उन सभी विचारों का त्याग करना चाहिए जो भौतिक इच्छाओं का कारण बनते हैं और इस प्रकार मन के द्वारा इन्द्रियों को वश में करके मन को इंद्रिय-वस्तुओं से अलग करना चाहिए।

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ ६-२५ ॥

धीरे-धीरे, बुद्धि के माध्यम से मन को स्थिर करना चाहिए, और उसे केवल स्वयं (आत्मा) पर केंद्रित करना चाहिए, कहीं और नहीं।

यतो यतो निश्चरति मनश्चब्लमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ६-२६ ॥

मन का स्वभाव चंचल और अस्थिर होता है। फिर भी, व्यक्ति को अपने मन को भटकने से रोक कर उसे अपनी आत्मा के अधीन में लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्पषम् ॥ ६-२७ ॥

परम आनंद उस योगी को प्राप्त होता है जिसने अपने जुनून को वश में कर लिया है, जिसका मन शांत है, जो बुरे व्यसनों से मुक्त है, और जो सदैव आध्यात्मिक धरातल पर स्थित रहता है।

युज्ज्ञेवं सदात्मानं योगी विगतकल्पषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्वुते ॥ ६-२८ ॥

इस प्रकार, योग के निरंतर अभ्यास के माध्यम से, एक योगी जो भौतिक संदूषण से रहित है, परम-सत्य के संपर्क के माध्यम से शाश्वत परमानंद की प्राप्ति कर सकता है।

~ अनुवृत्ति ~

योग के अभ्यास के लिए मन का नियंत्रण सर्वोत्कृष्ट है। समस्या स्वयं के मन के स्वभाव के कारण ही उत्पन्न होती है। मन का स्वभाव चंचल और अस्थिर है, यह सदैव इधर-उधर भटकता रहता है और एक इन्द्रिय-वस्तु से अगले वस्तु तक जाता रहता है। नींद में भी मन का भटकना सक्रिय रहता है। लेकिन श्रीकृष्ण कहते हैं, एक योगी को सदैव अपने मन को उच्च चेतना के नियंत्रण में रखने का प्रयास करना चाहिए। वास्तव में यह योगी के लिए सबसे बड़ी चुनौती है जिसका उसे सबसे पहले समना करना पड़ता है।

कुछ पश्चिमी दार्शनिक प्रणालियों में मन की कल्पना स्वयं के रूप में की जाती है, लेकिन योग में यह उचित नहीं है। मन को योग में आंतरिक इन्द्रिय' कहा

जाता है। शरीर की इन्द्रियां जैसे दृष्टि, ध्वनि, स्पर्श, सूँघना एवं स्वाद् बाहरी वस्तुओं के साथ जुड़े होते हैं और मन संकाय के रूप में कार्य करता है जो अंततः ऐंट्रिय अनुभवों का तात्पर्य समेटकर प्रस्तुत करता है। लेकिन योग में आत्मा की कल्पना एक तत्त्व के रूप में की जाती है जो मन और शरीर से स्वतंत्र होता है। इसलिए योग के ज्ञान के अनुसार, शरीर और मन की मृत्यु होने पर भी आत्मा की मृत्यु नहीं होती! यह बिलकुल कुछ अलग सा है।

योग प्रणाली के भीतर कई बाह्य पद्धति (बाहरी प्रक्रिया) हैं जैसे कि उपवास करना, एकांत स्थान में रहना जो मन के नियंत्रण में मद्द करते हैं। लेकिन मन का स्वभाव वायु की तरह होने के कारण, ये बाहरी तरीके अक्सर अपर्याप्त रह जाते हैं। परन्तु, भक्ति-योग की पद्धति में मंत्र द्वारा मन को नियंत्रित करने की अनुशंसा की जाती है। मंत्र शब्द की उत्पत्ति दो संस्कृत शब्दों से हुई है - 'मन' (मन) और 'त्रायते' (नियंत्रण करने के लिए)। मन को मंत्र जप की प्रक्रिया में व्यस्त करने से - विशेष रूप से महामंत्र के जाप से, चंचल मन स्वयं (आत्मा) पर स्थिर हो जाता है। महामंत्र परम-सत्य श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष ध्वनि निरूपण है। वैसे तो, महामंत्र दोनों ही सर्वशक्तिशाली एवं सर्वाकर्षक है।

महा-मंत्र के प्रभाव से जीवित प्राणियों की वास्तविक पहचान को आवृत करने वाला अज्ञान दूर हो जाता है, और महामंत्र की सर्व-आकर्षक प्रकृति, जप करने वाले के हृदय को परम आध्यात्मिक आनंद से परिपूर्ण कर देता है। इसलिए (इन कारणों से) मन को नियंत्रित और स्थिर करने के लिए महामंत्र का जप अत्यधिक अनुशंसित है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ ६-२९ ॥

जो परम-सत्य से जुड़ा होता है, वह सभी चीजों को समान रूप से देखता है। वह सभी जीवित प्राणियों में परमात्मा को देखता है एवं सभी प्राणियों को परमात्मा में देखता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ६-३० ॥

जो मुझे सर्वत्र देखता है और सब कुछ मुझमें देखता है उसके लिए न तो मैं कभी लुप्त होता हूँ और न मेरे लिए कभी वह लुप्त होता है।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ६-३१ ॥

वह योगी जो मुझे इस ज्ञान के साथ पूजता है कि मैं सभी जीवित प्राणियों में (परम चेतना के रूप में) स्थित हूँ, सभी परिस्थितियों में मेरे साथ रहता है।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ६-३२ ॥

हे अर्जुन, जो सभी के सुख और दुःख को समता से देखता (सम्मान देता) है, जैसे कि ये (सुख और दुःख) उसके अपने हैं, वह योगियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

अर्जुन उवाच ।
योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थिति स्थिराम् ॥ ६-३३ ॥

अर्जुन ने कहा - हे मधुसूदन, आपने योग की जिस पद्धति का वर्णन किया है मैं उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता क्योंकि स्वभाव से ही मन बहुत अस्थिर (चंचल) है।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ६-३४ ॥

मन अनियमित, अशांत, बहुत शक्तिशाली और हठी (जिद्दी) है। हे कृष्ण, मुझे लगता है कि इसे नियंत्रित करना उतना ही कठिन है जितना कि वायु को नियंत्रित करने का प्रयास करना।

श्रीभगवानुवाच ।
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्णते ॥ ६-३५ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया - हे महाबाहो, कुन्तीपुत्र! निस्सन्देह चंचल मन को वश में करना अत्यन्त ही कठिन है; किन्तु उपयुक्त अभ्यास एवं विरक्ति द्वारा मन को वश में करना सम्भव है।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवासुमुपायतः ॥ ६-३६ ॥

मेरा निष्कर्ष यह है कि अगर किसी का मन अनियंत्रित हो तो उसके लिए योग कठिन है। किंतु जब व्यक्ति उचित अभ्यास द्वारा मन को नियंत्रित करने का प्रयास करता है तब वह सफल हो सकता है।

~ अनुवृत्ति ~

श्रीमद्भगवद्गीता में पाँच प्राथमिक विषयों की व्याख्या की गई है, जैसे कि, आत्मा (व्यक्तिगत चेतना), प्रकृति (भौतिक प्रकृति), कर्म (क्रिया), काल (समय) और ईश्वर (परम नियन्ता)। भगवान् श्रीकृष्ण को ही सभी वस्तुओं के अंतर्निहित सिद्धांत के रूप में समझना ही ज्ञान के अर्जन की पराकाशा है। परन्तु भगवद्गीता के कुछ टीकाकारों ने बिना श्रीकृष्ण के ही गीता की व्याख्या करने की चेष्टा की है। यानी की उन्होंने ऐसी बातें कही हैं कि, “श्रीकृष्ण केवल परम ब्रह्मन के ही अस्थायी अभिव्यक्ति थे,” “व्यक्ति के रूप में उनका कोई शाश्वत अस्तित्व नहीं है,” या जब श्रीकृष्ण ऐसी बातें कहते हैं जैसे कि, “वह मेरे धाम की प्राप्ति करता है,” तो वास्तव में श्रीकृष्ण का अर्थ यह है कि वह कुछ अन्य अवैयक्तिक (व्यक्तित्वहीन) प्रकृति को प्राप्त करता है। यद्यपि, योग के सच्चे गुरु एवं वैदिक साहित्य के विद्वान् इस प्रकार के विचारों को अस्वीकार करते हैं।

हालांकि, भगवद्गीता, निश्चित रूप से गूढ़ (रहस्यमय) है, इस कारण से कि यह परम सत्य का विस्तृत रूप से निरूपण करता है और यह बताता है की उस परम सत्य को कैसे प्राप्त किया जाए, तब भी परम-सिद्धि के विषय पर यह कोई प्रतीकात्मक या काल्पनिक लेख नहीं है। भगवद्गीता को अक्षरशा (पूरी तरह से) श्रीकृष्ण और उनके प्रिय मित्र एवं भक्त अर्जुन के बीच वार्तालाप के रूप में लिया जाना चाहिए। इसी में भगवद्गीता को समझने का खुला रहस्य निहित है। श्रीकृष्ण वही कहते हैं जो वे वास्तव में कहना चाहते हैं और जो वे वास्तव में कहना चाहते हैं वही वे कहते हैं, इस कारण, भगवद-गीता पर कोई अमृत काल्पनिक टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

कि श्रीकृष्ण हर जगह, सभी वस्तुओं में एवं सभी प्राणियों के हृदय में वास करते हैं यह उपरोक्त छंदों में स्थापित किया गया है। श्रीकृष्ण का कहना है कि वह सभी जीवित प्राणियों में परमात्मा के रूप में वास करते हैं और सभी जीवित

प्राणी उनके अभिन्न अंग हैं। श्रीकृष्ण सभी में हैं, एवं सबकुछ श्रीकृष्ण में निहित है। जो इस तरह से देखने का प्रयास करता है वह प्रबुद्ध (ज्ञानी) बन जाता है - सचमुच इस प्रकार की दृष्टि को ही ज्ञानोदय (ज्ञान का अनुभव) कहते हैं।

अर्जुन एक आत्म-सिद्ध योगी एवं श्रीकृष्ण के नित्य संगी होने के नाते, ऐसे निष्कर्षों पर श्रीकृष्ण के साथ वे तर्क नहीं करते हैं। परन्तु ऐसी सिद्धि प्राप्त करने के लिए योग की कठोरता पर अर्जुन आपत्ति व्यक्त जरूर करते हैं। अर्जुन कई जिम्मेदारी वाले एक पारिवारिक व्यक्ति थे, इसलिए वे योग का अभ्यास कैसे कर सकते थे? अर्जुन अपने परिस्थिति को ही उदाहरण बनाकर आम जनता के पक्ष में बहस करते हैं, कि श्रीकृष्ण द्वारा अब तक वर्णित मन को वश करने की कड़ी योग प्रणाली बहुत ही कठिन है। यह महज अव्यावहारिक है।

अर्जुन के लिए श्रीकृष्ण का यह आश्वासन है कि यदि कोई दृढ़ संकल्प से अभ्यास करे तो वह अवश्य सफल होगा। लेकिन अर्जुन की बात को समझते हुए, अपनी भगवद्गीता के प्रवचन में आगे चलते, श्रीकृष्ण निश्चित ही परम-सत्य की प्राप्ति को सभी की पहुंच में ले आएंगे।

अर्जुन उवाच ।
अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ६-३७ ॥

अर्जुन ने कहा - हे कृष्ण, एक ऐसे व्यक्ति की गन्तव्य स्थान क्या है जिसमें श्रद्धा है किंतु योग की प्रक्रिया से अपने मन को वश में न कर पाने से वह सिद्धि प्राप्त नहीं करता?

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्चिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ६-३८ ॥

हे महाबाहु कृष्ण, क्या ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिक पथ पर भ्रमित होकर, बिना आश्रय के, विखरे बादल की भाँति विनष्ट हो जाता है?

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुर्मर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ६-३९ ॥

हे कृष्ण, केवल आप ही मेरा संदेह पूरी तरह से मिटा सकते हैं, कोई और नहीं।

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीभगवानुवाच ।
पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ६-४० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया - हे पार्थ, ऐसा व्यक्ति न इस जन्म में ना अगले जन्म में विनष्ट होता है। जो धर्म का आचरण करता है वह कभी भी दुर्भाग्य का सामना नहीं करता।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगब्रष्टोऽभिजायते ॥ ६-४१ ॥

जो योग के अभ्यास से भटक जाते हैं वे स्वर्गीक लोकों को प्राप्त करते हैं और कई वर्षों तक वहाँ रहते हैं। उसके पश्चात, वह किसी कुलीन और समृद्ध परिवार में मनुष्यों के बीच जन्म लेते हैं।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्विदुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशाम् ॥ ६-४२ ॥

अन्यथा, वे एक विद्वान् योगी के परिवार में जन्म लेते हैं। निस्संदेह, इस तरह का जन्म इस संसार में दुर्लभ होता है।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ६-४३ ॥

हे कुरु वंशज, अपने पिछले जन्मों में प्राप्त योग के ज्ञान को पुनः समेट कर, वे सफल होने का पुनः प्रयास करते हैं।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव हियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ६-४४ ॥

अपने पिछले जीवन के अभ्यास के कारण, वे स्वतः ही योग की प्रक्रिया के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। एवं, इस योग की प्रक्रिया पर केवल जिज्ञासा करके, वे बड़ी आसानी से वेद के अनुष्ठानों से परे स्थित हो जाते हैं।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ६-४५ ॥

सच्ची निष्ठा से प्रयत्न करने के बाद योगी सभी संदूषणों से शुद्ध हो जाता है और अनेकानेक जन्मों के अभ्यास के पश्चात् सिद्ध होकर वह परम गन्तव्य को प्राप्त करता है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ६-४६ ॥

ऐसा योगी, एक तपस्वी (जो घोर तपस्या करता है), एक ज्ञानी (जो बौद्धिक खोज द्वारा पूर्णता को प्राप्त करने की कोशिश करता है), और एक कर्मी (जो वैदिक अनुष्ठानों द्वारा मोक्ष पाने की कोशिश करता है) से भी श्रेष्ठ होता है। यही मेरा निष्कर्ष है, हे अर्जुन - इसलिए तुम एक योगी बनो!

योगिनामपि सर्वेषां मद्दतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मांस मे युक्ततमो मतः ॥ ६-४७ ॥

मैं भक्ति-योगी को सभी योगियों में से सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ, जो मुझ में दृढ़ रहते हैं, जो मुझ पर ध्यान करते हैं और दृढ़ श्रद्धा से मेरी पूजा करते हैं!

~ अनुवृत्ति ~

श्लोक ३७ एवं ३८ में अर्जुन के प्रश्न हमारी जानकारी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। अर्जुन जानना चाहता है कि जो थोड़े समय के लिए योग का अभ्यास करता है, किंतु किसी कारणवश आत्म-साक्षात्कार प्राप्त नहीं करता, और मृत्यु के कारण शरीर का त्याग कर देता है, उसका क्या होता है। ऐसे व्यक्ति की अगले जन्म में क्या नियति है?

यहां ध्यान देने वाली पहली बात यह है कि अर्जुन जानता है एवं पूरी तरह से आश्वस्त है कि मात्र एक जीवनकाल सब कुछ नहीं होता। जैसा कि श्रीकृष्ण ने पहले कहा है, हमने अतीत में कई जीवन बिताए थे और भविष्य में भी हमारे कई जीवन होंगे। इसलिए अर्जुन अपनी या किसी ऐसे व्यक्ति की नियती जानना चाहते हैं, जो योग का अभ्यास करता है, परन्तु सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाता। अगले जन्म में ऐसे व्यक्ति का क्या गन्तव्य होगा?

श्रीकृष्ण का उत्तर सर्वज्ञ परम पुरुष का उत्तर है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि एक योगी का कभी नुकसान नहीं होता। यदि कोई इस जीवन में योग-सिद्धि नहीं हो पाता है, तो अगले जीवन में वह व्यक्ति एक अनुकूल परिस्थितियों में जन्म

श्रीमद्भगवद्गीता

लेता है और दोबारा इस प्रक्रिया को वही से शुरू करता है। अगले जन्म में, वह दोबारा योग के अभ्यास से आकर्षित होता है और वह अपने पथ पर जारी रहता है। भले ही इसमें कई जीवनकाल लग जाये, योगी अपनी दृढ़ता और दृढ़ संकल्प से, सर्वोच्च गंतव्य को प्राप्त करता है। इसलिए, श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, सभी परिस्थितियों में, एक योगी बनो।

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां
वैयासिक्यां भीष्मपर्वाणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
ध्यानयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

ॐ तत् सत् – अतः व्यास विरचित शतसहस्र श्लोकों की श्री महाभारत ग्रन्थ के भीष्म-पर्व में पाए जाने वाले आध्यात्मिक ज्ञान का योग-शास्त्र - श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् में श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद से लिए गए ध्यान योग नामक छठे अध्याय की यहां पर समाप्ति होती है।

